भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका

पिंकी घोघलिया*

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, गुरु द्रोणाचार्य गर्ल्स कॉलेज,
मंडी आदमपुर हिसार, हरियाणा, भारत

Email ID: *pinkughoglia123@gmail.com*

Accepted: 06.04.2022 **Published**: 01.05.2022

मुख्य शब्दः भारतीय राजनीति, जातिवाद, राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक व्यवस्था।

शोध आलेख सार

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति का आधुनिक स्वरूप विकसित हुआ। अतः यह संभावना व्यक्त की जाने लगी कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने पर भारत से जातिवाद समाप्त हो जायेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ बल्कि जातिवाद ने न केवल समाज में बल्कि राजनीति में भी प्रवेश करके उग्र रूप धारण कर लिया हैं। भारत में जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रवृतियों को ही प्रभावित किया है, बल्कि राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया हैं। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। केन्द्र ही नहीं राजस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि इसके कारण राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरुद्ध हो रहा है।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

भूमिका

भारतीय राजनीति की मुख्य विशेषता है – ''परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना'' स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति का आधुनिक स्वरूप विकसित हुआ। अतः यह सम्भावना व्यक्त की जाने लगी कि देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित होने पर भारत से जातिवाद समाप्त हो जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ अपितु जातिवाद न केवल समाज में ही वरन् राजनीति में भी प्रवेश कर उग्र रूप धारण करता रहा।

भारत में विद्यमान जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को ही प्रभावित किया है। जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व भी था

किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रजातन्त्र की स्थापना होने पर समझा गया कि जातिगत भेद मिट जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

राजनीतिक संस्थाएं भी इससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकी परिणामस्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। केन्द्र ही नहीं राज्यस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए सबसे खतरनाक बात है क्योंकि राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरुद्ध हो रहा है।

जाति का राजनीतिकरण 'आधुनिकीकरण' के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहा है क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक–साम्प्रदायिक सद्भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश के बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस संदर्भ में ईमानदारी के साथ सोचें और इस समस्या एवं इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं का समाधान करने हेतु गम्भीरतापूर्वक प्रयास करें। प्रारम्भ में जाति प्रथा के बंधन कठोर नहीं थे परन्तु बाद में यह जाति–भेद में बदलाव आ गई। वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वर्ण का निर्धारण व्यवसाय से होता था। जबकि जाति का निश्चय जन्म से होता था। इस प्रकार जो संस्था कभी हितकर थी, वही बाद में भ्रष्ट हो गई।

जाति–प्रथा के कारण समाज बहुत से टुकड़ों में बँट गया तथा व्यक्ति–व्यक्ति के बीच भेद–भाव की खाई खड़ी हो गई। पारम्परिक द्वेष और जातीय अहंकार के कारण भारतवासी कभी एक न हो सके और सामूहिक रूप से विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने में असफल रहें। राष्ट्रहित को भुलाकर, जातीय गौरव को ही सब कुछ मान लिया गया। इस प्रथा का सबसे भयंकर परिणाम था – 'छुआछूत', जिसने समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को आत्म–सम्मान से वंचित कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई।

देखने पर लगता था कि जातिवाद समाप्त हो गया है किन्तु पुनः इसने धीरे– धीरे जोर पकड़ा और व्यस्क मताधिकार व्यवस्था के देश में लागू कर दिये जाने के कारण यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप उदित हुआ। प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने पर राजनीति पर जातिगत प्रभाव शुरू हो गया। इसका कारण सीमित मताधिकार, राष्ट्रीय आन्दोलन एवं ब्रिटिश प्रशासन था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तीनों कारणों का निराकरण हो गया क्योंकि भारत में व्यस्क मताधिकार प्रणाली को अपनाया गया था। प्रारम्भ में तो आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ उच्च जातियाँ ही राजनीति से प्रभावित थी किन्तु धीरे–धीरे मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियाँ भी आगे आकर अपने राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि करने हेतु प्रयत्नशील रहने लगी।

प्रोफेसर रुडोल्फ के अनुसार, ''भारत राजनीतिक लोकतन्त्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिए भारतीय को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है। ''प्रोफेसर रजनी कोठारी अपनी पुस्तक

'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका विस्तृत विश्लेषण किया हैं। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत में जाति प्रथा खत्म हो रही है ?

इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएं हैं, ज्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति–प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड़ रहा है और जाति–पांति वाले समाज में राजनीति क्या रूप ले रही है ? जो लोग राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न तो राजनीति के प्रकृत स्वरूप को ठीक समझ पाए हैं न जाति के स्वरूप को।

भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित हैं। अतः न चाहते भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पड़ेगा। अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे में खींचकर यजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी और राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है।

राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जातीय संगठन उपयोग करते हैं और जातियों के रूप में उनको बना–बनाया संगठन मिल जाता है जिससे राजनीतिक संगठन में आसानी होती है। भारत में जाति और राजनीति में आपसी सम्बन्ध को समझने हेतु इन चार तथ्यों पर विचार आवश्यकता हैं। प्रथम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संगठन जाति के आधार पर हुआ है। राजनीति केवल सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र है इसलिए सामाजिक व्यवस्था राजनीतिक का स्वरूप निर्धारित करती हैं। द्वितीय, लोकतान्त्रिक समाज में राजनीतिक प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है कि उनका पूर्ण समर्थन प्राप्त करके अपनी स्थिति को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाये। तृतीय, भारत की राजनीति व्यवस्था के संबंध में य कहना सही होगा कि भारतीय राजनीति क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है तो उसे अवश्य किसी संगठित जाति का सहारा लेना पड़ता है। चतुर्थ, वर्तमान समय में, जातियाँ ही संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग लेती हैं तथा राजनीतिक शक्तियाँ बन जाती हैं।

अतः स्पष्ट है कि जाति और राजनीति के मध्य अन्तर क्रिया पाये जाने का परिणाम यह हुआ है कि ''बजाय राजनीति पर जाति के हावी होने के, जाति का राजनीतिकरण हो गया है।'' इन तथ्यों को स्पष्ट करने के पश्चात् भारतीय राजनीति में जाति के, प्रवेश की भूमिका संबंधी विशेषताओं को जानेगें जो इस प्रकार हैं –

- राजनीति और जाति का संबंध गतिशील है।
- जाति का महत्व राष्ट्रीय स्तरीय राजनीति पर उतना नहीं जितना स्थानीय और राज्य राजनीति पर हैं।
- चुनावों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते है।
- औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा और आधुनिकीकरण से जातियाँ समाप्त नहीं

हुई, वरन् उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिल और उनकी राजनीतिक भूमिका में वृद्धि हुई।

- जातिगत राजनीतिक महत्वकांक्षा को जातीय संघों एवं जातीय पंचायतों ने बढ़ाया है। अतः जातिवाद को समाप्त करने वाले आन्दोलन नवीन जातियों के उदय का कारण बने।
- 19वीं सदी के उतरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था, जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली थी।
- राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति संख्या की दृष्टि से गाँव में क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं जैसे पंचायतों की राजनीति में सक्रिय होती है।

किसी राज्य में एक विशेष जाति की प्रधानता होने के कारण वह जाति राज्य राजनीति का प्रमुख तत्व बन जाती है। जातिवाद का एक अन्य पक्ष यह भी है कि कोई जाति विशेष किसी राज्य या क्षेत्र विशेष में सार्वजनिक महत्व के कार्य जैसे स्कूल, कॉलेज खोलना, अस्पताल, मंदिर, गुरुद्वारे आदि बनवाना, गरीब लोगों की आर्थिक दृष्टि से मदद करना आदि करती है, तो ऐसे कार्य करने पर किसी के द्वारा विरोध या विद्वेष की भावना फैलेगी यदि वही जाति अन्य जातियों को परेशान करती है तो यह स्थिति अवश्य भयावह बन जाती है।

वर्तमान व्यवस्था में वास्तव में यही भयावह रूप देखने को मिलता है जैसे जातियों के नाम पर चलने वाली संस्थायें अपनी जाति विशेष को छोड़ अन्य जातियों के लोगों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करती हैं। इसी प्रकार योग्य एवं प्रतिभाशाली लोग गरीब अथवा पिछड़ी जाति के होने के कारण सर्वत्र उपेक्षित रह जाते हैं। भारत में जातिवाद का होना वास्तव में एक सामाजिक बुराई है। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि हमारे राजनीतिक जीवन में जाति व्यवस्था इस प्रकार से स्थितियों का निर्धारण करती रही है तथा आज भी कर रही है, लेकिन गरीब हमेशा दलित, अशिक्षित, सामंतवादी, उपनिवेश बने रहे। जात–पात बहुल हमारे इस समाज से यह अपेक्षा भी कैसे की जा सकती थी कि वह चमत्कारिक ढंग से अपने आप में कोई व्यापक परिवर्तन ला सकता था। 50 वर्षो का यह समय वस्तुतः हमारे देश की सोच में परिवर्तन का एक मध्य काल रहा है।

इस सच्चाई को कोई कितना भी नकारे, मगर आज भी भारतीय जनतंत्र की मुख्य राजनीतिक धुरी नागरिक नहीं जाति ही है। यह आगे भी होगी माना कि जाति व्यवस्था अपने में जनतंत्र का निषेध है। यह व्यक्ति का सामाजिक दर्जा उसकी योग्यता से नहीं, उसके जन्म से निर्धारित करती है। सदियों से यह समाज के बड़े हिस्से को अछूत मानती आई है। लेकिन देश के स्वतंत्र होने के 'आधी सदी बाद भी जाति, संप्रदाय और जाति का प्रभाव सार्वजनिक जीवन में समाप्त नहीं हुआ। वास्तव इसकी पैठ पहले से अधिक मजबूत हो गई है।

समाज में जात–पांत की शक्ति का अनुमान तो अस्पृश्यता की प्रथा से लगता है। भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को 4.–45 साल पहले गैरकानूनी घोषित कर दिया पर अस्पृश्यता मिटी नहीं है। इसके फलस्वरूप आज भी समाज का काफी बड़ा हिस्सा मानवाधिकारों से वंचित है। यह कथन गलत नहीं है कि जाति व्यवस्था भारतीय समाज जीवन की सबसे बड़ी और सर्वाधिक कटु वास्तविकता हैं। इसे आप अनदेखा नहीं कर सकते यह अलग बात है कि कतिपय राजनीतिकों और सामाजिक–राजनीतिक प्रेक्षकों को पिछले कुछ बरसों में ही राजनीति में जाति का जोर नजर आने लगा है। जाति व्यवस्था की खूबी है कि यह मनुष्य को मनुष्य से काट देती है। यह मनुष्य की संवेदनशीलता को ही अवरुद्ध कर देती है, जातिग्रस्त मन इतना छोटा और संकीर्ण होता है कि वह इतर जातियों के लोगों के नैतिक गुणों को पहचान तक नहीं पाता। वह अन्य मनुष्यों की मनोदशा की कल्पना तक नहीं कर पाता।

यह एक प्रकार की मानसिक विकलांगता है। इससे पनपी कमियों को हम अपने से हीन विशेषकर अछूत जातियों के बारे में सदियों से चले आ रहे पूर्वग्रहों से पूरा करते हैं। आज भी यह सिलसिला जारी है, इतना जरूर हुआ है कि चतुर लोग अब अस्पृश्यता, ऊँच–नीच, जन्मजात श्रेष्ठता के मुहावरे इस्तेमाल नहीं करते। अब वे योग्यता, कार्यक्षमता, उत्पादकता की आधुनिक शब्दावली में पिछड़ों–दलितों का निकम्मापन परिभाषित और प्रमाणित करते हैं।

दूसरी ओर, पिछड़ों और दलितों में भी 'आरक्षण आश्रित मनोवृत्ति' का ही आसरा है। संविधान में आरक्षण की व्यवस्था दलितों की उन्नति का मार्ग खोलने के लिए की गई थी। सोचा यह गया था कि दलितों की सामाजिक उन्नति, शिक्षा–प्रसार, आर्थिक विकास से जन–जन की समृद्धि और सरकारी सेवाओं में नियुक्तियों से जातिगत भेदभाव कम होगा।

जातियों की दीवारें ढहेंगी और धीरे–धीरे छुआछूत के संस्कारों से मुक्त नई महाजाति का विकास होगा। वह एक नया, सामाजिक न्याय और समता पर आधारित समाज बनाने में मददगार होगी। राममनोहर लोहिया के आलोचकों द्वारा अतिनिंदित और पथभ्रष्ट अनुयायियों द्वारा अतिविकृत 'जाति–नीति' का भी यही मकसद था। असल में लोहिया ने तो जाति व्यवस्था पर प्रहार को अनेक कार्यक्रमों के साथ जोड़ कर जाति तोड़ी नीति के रूप में प्रतिपादित किया था।

जैसा कि विचारों के इतिहास में प्रायः होता रहा है, उनके अनुयायियों ने अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिए उसे जाति नीति में बदल लिया। यह सही है कि न तो अस्पृश्यता मिटी है और न ही जाति चेतना कम हुई है। वास्तव में जाति चेतना तेजी से बढ़ रही है। इसके लिए पूरी समाज व्यवस्था पर हावी उच्चवर्गीय चरित्र तो जिम्मेदार है ही, मगर इन सहूलियतों से पनपा दलित विशिष्ट वर्ग भी कम जवाबदेह नहीं है। यह विशिष्ट वर्ग अपनी अगली पीढ़ियों को अन्य वर्गों के साथ बराबरी के स्तर पर प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार नहीं करता। यह अपने बाल–बच्चों के लिए भी ऐसी ही सुविधाएँ सुरक्षित रखना चाहता है। इससे अगड़ी जातियों की तरूण पीढ़ी में इन नीतियों के लिए प्रतिरोध पनप रहा है। इसके साथ ही सामाजिक ऊँच–नीच

की सीढ़ी पर दलितों में से भी दलित, निर्धन और संख्या के लिहाज से कमजोर छोटी जातियों की उन्नति में बाधा आ रही है। जो हाल देश में आर्थिक उन्नति का हुआ है, वहीं धीरे–धीरे आरक्षण का भी हो रहा है। आर्थिक उन्नति की लक्ष्मी आधी सदी बीत जाने पर भी गरीब की झोपड़ी तक नहीं पहुंची, सामाजिक समता और न्याय की किरणों से भी नितांत दलित आज तक वंचित है। इसी प्रकार जाटो, गुजरों, वैश्यों के भी अपने अनेक वर्ग है जिनका आधार जाति ही है। ब्राह्मणों के भी कई वर्ग हैं – कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, दक्षिणात्य आदि इनके भी अनेक संगठन जिनका उद्देश्य जातीय भावनाओं को उकसाना है। सभी जातीय राजनीतिक निकक्ष 17 संगठन एवं जातीय नेता राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों से सांठ–गांठ करके जाति का राजनीतिकरण करने पर तुले हुये हैं। प्रायः आज सभी जगह जातीय संघर्ष, तनाव, हिंसा, झगड़े आदि देखने में आते हैं।

जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि ''जाति भारत में एक महत्वपूर्ण दल है हरेल्ड गोल्ड के अनुसार ''राजनीति का आधार होने की बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्व हैं।'' जातीय व्यवस्था भारतीय समाज का एक परम्परागत तत्व है। जाति प्रथा भारत में ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि जाति का प्रभाव कुछ कम हो गया है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं हुआ बल्कि धीरे–धीरे जाति भी राजनीति को प्रभावित करने लगी क्योंकि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और जातिगत संस्थाएं महत्वपूर्ण बन गई क्योंकि उनके पास अधिक संख्या में मत थे और लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीतिज्ञों के लिए इन मतों का मूल्य था।

सामान्य जनता से मत प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र बनाने के लिए उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग किया, जो भाषा जाति विशेष से संबंधित थी। अतः इस दृष्टि से जाति की भूमिका राजनीति में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई। राजनीतिक एवं प्रशासनिक निर्णय की प्रक्रिया में प्रत्येक जाति प्रभावी भूमिका निभाती है, जैसे कि पिछड़ी जातियाँ संविधान में दी गई आरक्षण की व्यवस्था को बढ़ाने हेतु सरकार पर दबाव डालती है जबकि अन्य जातियाँ सरकार पर दबाव खुलती हैं नई आरक्षण व्यवस्था को समाप्त कर इसका आधार सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को बनाया जाए।

भारत में सभी राजनीतिक दल भी अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते हैं।

भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा होता है उस क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायरू उकसाया जाता है ताकि संबंधित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके।

जातिवाद ने राजनीति को इस तरह से प्रभावित कर दिया है कि प्रायः सभी राजनीतिक दलों द्वारा यह माना जाता है कि राज्यस्तरीय मंत्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मंत्री अवश्य

होना चाहिए। केवल प्रान्तीय स्तर पर ही नहीं अपितु ग्राम पंचायती स्तर पर भी यही भावना बैठ गई है। मेयर के अनुसार 'जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हैं।

अनेक दबाव समूह अपने हितों एवं स्वार्थो की पूर्ति हेतु शासन व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। यह कभी–कभी अपने स्वार्थो के कारण राजनीतिक सौदेबाजी भी करते हैं और यदि राजनीतिक सौदेबाजी पूरी नहीं होती तो यह लोग हिंसा का सहारा लेते हैं। भरत में प्रशासनिक क्षेत्र में भी 'जाति' ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

लोकसभा तथा विधानमण्डलों के लिए जातिगत आधार पर आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित हैं। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों तथा पदोन्नतियों के लिए भी जातिगत आरक्षण को अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त मेडीकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्ती के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। हरिजनों और अनुसूचित जातियों को प्रत्येक स्थान पर आरक्षण प्रदान किया गया है।

जातिवाद का प्रभाव राज्यस्तर की राजनीति पर भी है। कोई भी ऐसा राज्य नहीं है जहाँ की राजनीति जातिवाद से प्रभावित न हो। केरल, महाराष्ट्र, बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा आदि राज्यों की राजनीति पर जातिवाद हावी है। गुजरात व कर्नाटक राज्य में मध्यवर्गीय जातियाँ राजनीतिक संघर्ष में रत दिखायी देती है।

यहाँ मुख्यतः प्रतिस्पर्द्धा लगभग दो समान जातियों के मध्य पाई जाती है। तमिलनाडु में ब्राह्मणों एवं निम्न जातियों के बीच गंभीर संघर्ष रहा है क्योंकि यही की राजनीति में प्रारम्भ से ही ब्राह्मणों का प्रभुत्व रहा और इसके विरुद्ध काफी दिनों तक यही आन्दोलन चलता रहा परिणामस्वरूप द्रविड नामक संगठन की स्थापना की गयी जो बाद में द्रविड मुन्नेत्र कड़गम दल के रूप में विकसित हुआ।

महाराष्ट्र की राजनीति तमिलनाडु से कुछ भिन्न रही है, यहाँ मराठा और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष रहा और इस संघर्ष में मराठा जाति ने ब्राह्मणों के शताब्दियों से चले आ रहे प्रभुत्व को समाप्त किया। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है। काम्माओं ने साम्यवादी दल का समर्थन किया तो रेड्डी जाति ने कांग्रेस का बिहार की राजनीति में राजपूत, कायस्थ, ब्राह्मण और जनजाति प्रमुख प्रतिस्पर्द्धा जातियाँ हैं। पृथक् झारखण्ड राज्य की मांग वस्तुतः एक जातीय मांग ही रही है। केरल में साम्यवादियों की सफलता का राज यही है कि उन्होंने इझजवाहा जाति को पीछे संगठित कर लिया। राजस्थान की राजनीति में जाट –राजपूत जातियों की प्रतिस्पर्द्धा प्रमुख रही हैं। संक्षेप में, राज्जो की राजनीति में जाति का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि टिकर जैसे विद्वानों ने राज्यों की राजनीति को 'जातियों का राजनीति' की संज्ञा दे उाली है।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय समाज में जातिगत भेद–भाव केसर एव एड्स जैसे भंयकर रोगों की तरह सर्व़त्र फैल गया है, जिसका निदान असम्भव है। इसीलिए भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त

जटिल कार्य है। यह केवल व्यक्ति–व्यक्ति के बीच खाई पैदा नहीं कर रही अपितु राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा उत्पन्न कर रही है। आज राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा जातिगत हितों को विशेष महत्व दिया जा रहा है, जिसके कारण हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था कमजोर हो रही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम०एन० श्रीनिवास का मत है कि ''परम्परावादी जाति व्यवस्थाने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस प्रभावित किया है कि वे राजनीतिक संस्थायें अपने मूलरूप में कार्य करने में समथ नहीं रहीं है।'' डी०आर० गाडगिल के शब्दों में ''क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हुई है।'' अतः जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। लोकतन्त्र व्यक्ति को इकाई मानता है न कि किसी जाति या समूह को जाति और समूह के आतंक से मुक्त रखना ही लोकतंत्र का आग्रह है।

सन्दर्भ सूची

- अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ
- भारत का संविधान, भारत सरकार, 1991
- श्रीनिवासन, एम०एन०, आधुनिक भारत में जाति
- राजकिशोर, जाति का जहर
- https://www.rajnitivigyan.in/2019/05/jaativad-bhaarateey-raajaneeti-mein-jaat-i- kee-boomika.html
- http://wrd.bih.nic.in/font_KtoU.htm